International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 21-06-2025, Accepted: 22-07-2025, Published: 06-08-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 102-104

भारतीय निर्वाचन प्रणाली : दशा एवं दिशा

डॉ. नरेन्द्र सिंह[1], डॉ. शक्ति गुप्ता[2]
[1] प्रभागीय वनाधिकारी, महोबा, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी, सुमेरपुर–हमीरपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, सुमेरपुर–हमीरपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
1935 के अधिनियम के द्वारा मताधिकार को पहले से अधिक विस्तृत बना दिया गया था जिस कारण प्रान्तीय विधानसभाओं के लिए लगभग 14 प्रतिशत जनता को मताधिकार प्राप्त हो गया था लेकिन साथ ही साथ साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का पहले से अधिक विस्तार कर दिया गया था। 1935 के भारतीय शासन अधिनियम की योजना का संधीय भाग कभी कार्य रूप में परिणित नहीं किया जा सका क्योंकि देशी राज्यों के नरेशों ने संघ योजना को अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस ने भी न केवल अधिनियम की संघीय योजना को ठुकरा दिया बल्कि भारत के भावी संविधान का निर्माण करने के लिए एक संविधान सभा की मांग की। जिसके परिणाम स्वरूप 1946 में कैबिनेट मिशन योजना अस्तित्त्व में आयी जिसमें भारत के भावी शासन व्यवस्था चुनाव प्रणाली आदि की चर्चा की गयी थी।

मुख्य शब्दः साम्प्रदायिक निर्वाचन, संविधान सभा, कैबिनेट मिशन योजना

लोकतंत्रात्मक शासन प्रणालियों की विशिष्टता स्वतंत्र निर्वाचनों के कारण है। यह निर्वाचन उन प्रणालियों के औचित्य को सिद्ध करने तथा उनमें जनता की भागीदारी की भावना को व्यक्त करने के लिये आवश्यक है। निर्वाचनों ने भारत में लोकतंत्र और राजीतिक विकास की दिशा में निर्णायक भूमिका अदा की है। आज लोकतंत्र का अर्थ ऐसी राजनीतिक पद्धति है जिसमें राष्ट्र के लोग स्वंय सीधे–सादे शासन नहीं करते बल्कि सरकार पर असरदार नियंत्रण भी रखते हैं। यही वह विशेषता है जिसके कारण किसी लोकतांत्रिक राष्ट्र को अलोकतांत्रिक राष्ट्र से अलग करके देखा जा सकता है। जहां जनता सीधे शासन करती है या जहां सरकार जनता के नियंत्रण में नहीं है वहां चुनाव का महत्व गौण है, परन्तु जहां सरकार जनता से भिन्न है किन्तु फिर भी उसे जनता के नियंत्रण में रहना पड़ता है, वहां चुनावों का बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत में निर्वाचन वह शक्तिशाली यंत्र सिद्ध हुआ है जिसके द्वारा जनता लोकतांत्रिक ढंग से सरकार पर नियंत्रण करती जा रही है। विगत आम चुनावों में चाहे वे लोकसभा के हुए हों या राज्यों के, जनता द्वारा ही यह निर्णय किया गया है कि कौन उस पर शासन करेगा।

वास्तविक लोकतंत्र में निर्वाचित व्यक्तियों का कार्यकाल कुछ वर्षों तक ही सीमित होता है और वे फिर से सत्तारूढ़ होना चाहते हैं तो उन्हे फिर से चुनाव में अन्य प्रत्याशी की तरह चुनाव मैदान में खड़ा होना पड़ता है पर इसकी कोई गारंटी नहीं रहती कि वे फिर से चुने ही जायेंगे। भारत के आम चुनावों और उप–आम चुनावों में बड़े–बड़े नेता धराशायी होते रहते हैं। चुनावों में भारतीय जनता को यह स्वतंत्रता प्राप्त है कि वह शासकों के एक गुट को हटा कर उसके स्थान पर दूसरे गुट को बैठा दे। अब तक के सोलह आम चुनावों में निरंतर इस बात की पुष्टि होती रही है कि भारत के मतदाता भारतीय लोकतंत्र की रक्षा के लिये सदैव जागरूक रहें हैं। सभी चुनाव कुछ अपवादों को छोड़कर शान्ति पूर्वक सम्पन्न हुये और मतदाताओं ने अपनी मनचाही सरकार चुनी। वैयक्तिक मतदाताओं की पुष्टि सेभी चुनाव बहुत महत्वपूर्ण है। भारत में चुनावों ने मतदाताओं को राजनीतिक शक्ति में भाग लेने का अवसर प्रदान किया है चाहे वह भाग कितना ही छोटा हो। बुद्धिमान तथा दिलचस्पी रखने वाले नागरिकों को यह भी संतोष रहता है कि उन्होने मनपसंद प्रतिनिधि को वोट दिया। ऐसे में लोगों को भी यह अनुभव होता है कि कम से कम कुछ समय के लिये ही सही अपनी स्वार्थ की खोल से बाहर निकल आने में समर्थ होते हैं और सार्वजनिक हित में हाथ बटा सकते हैं। जिन लोगों को साधारणतया अच्छी नजरों से नहीं देखा जाता है क्योंकि वह गरीब या छोटी जाति अथवा वर्ग के होते हैं उन्हे भी इस समय संतुष्टी मिलती है कि उम्मीदवार उन्हे महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में सम्मान दे रहें हैं और उन्हें यह महसूस होता है कि समाज में उनका एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार उनके आत्म सम्मान की भावना में भी कुछ वृद्धि होती है।

भारत में चुनावों ने धर्म निरपेक्षीकरण और राजनीतिक आधुनिकीकरण को सराहनीय रूप में आगे बढ़ाया है। भारतीय निर्वाचनों ने मतदाताओं और प्रत्याशियों के सम्पर्क में वृद्धि करके देश के राजनीतिक विकास को गति दी है। आम चुनावों ने भारत में राजनीतिक एकता को जो प्रोत्साहन दिया है वह देश के राजनीतिक विकास के लिये अतिआवश्यक है। राजनीतिक विकास के लिये राजनीतिक स्थिरता और व्यवस्थित परिवर्तन होना जरूरी है और इस दिशा में हमारे निर्वाचनों ने सफल भूमिका अदा की है। सत्ता परिवर्तन के लिये तलवारों के खेल से भारत बहुत कुछ इसलिये बचा रहा कि यहां निष्पक्ष और स्वतंत्र निर्वाचनों की व्यवस्था है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था की यह विवशता है कि विकल्प बनाने का उपाय मतदाता के हाथ में नहीं है उसे मौजूदा विकल्पों, राजनीतिक दलों और उनके उम्मीदवारों में से ही कोई विकल्प चुनना पड़ता है। यह भी विचित्र बात है कि जहा राजनीतिक प्रेशक चुनावों के समय जात–पात, सम्प्रदाय क्षेत्र को महत्व देते हैं, वहां एक से अधिक बार मतदाता का फैसला इन संकीर्ण दायरों से उपर बड़े राजनीतिक मसलों के आधार पर भी हुआ है।

भारत में निर्वाचन प्रणाली का उदय प्राचीन काल में ही हो चुका था। अंग्रेजी साम्राज्य तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के समय चुनाव प्रणाली का क्रमशः विकास होताना। स्वतंत्रता के पश्चात संविधान निर्माताओं ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हर चुनावों को स्वतंत्र तथा निष्पक्ष बनाने का प्रयास किया है। स्पष्ट है कि धनों ने भारत में लोकतंत्र की सुदृढ़ नींव तैयार की है, तथा स्वस्थ राजनीतिक धिकश की आधारशिला भी रखी है। निर्वाचन हमारे लोकतांत्रिक राष्ट्र के दाँचे और कार्यान्वयन के लिये बिल्कुल मर्मस्थल के रूप में है और इसे न्यायोचित्त अथवा स्वतंत्र बनाये रखने के लिए सभी संभव उपाय किया जाना चाहिए।

भारत में निर्वाचन व्यवस्था का एक लम्बा इतिहास रहा है। प्राचीन भारत के राजतंत्राताक स्वरूप में भी जनसहभागिता के लक्षण

विद्यमान थे। जनसाधारण शासक के चुनाव में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेता था। वैदिक ग्रंथ अथर्ववेद ॥ सभाश और श्सगितिश् नामक दो प्रमुख राजनीतिक इकाईयों का उल्लेख किया गया है जो जनसाधारण, जनमुखी एवं जनसहमति पर आधारित थी। प्राचीन भारत में इन्हीं राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से जनसाधारण राजनीतिक क्रियाकलापों में सहभागी होता था। समिति जनसाधारण लोगों की संस्था थी जिसके माध्यम से जनता अपने शासक का चुनाव करती थी। सभा कुलीन और संभ्रान्त लोगों की संस्था थी जो जनसाधारण की इच्छाओं के अनरूप शासन का संचालन करती थी।

मध्यकाल में मुस्लिम शासन व्यवस्था स्थापित होने के कारण जनसाधारण को किसी भी प्रकार की राजनीतिक सहभागिता प्राप्त नहीं थी. क्योंकि भारत में इस्लामिक शासन की स्थापना शक्ति के बल पर की गयी थी और उसमें शक्ति के आधार पर ही सत्ता का हस्तान्तरण और परिवर्तन होता था। किन्तु कुछ मुस्लिम शासकों विशेषकर मुगल काल के पूर्ववर्ती शासकों द्वारा जनता के हितों का ध्यान रखा गया परन्तु उनके द्वारा भी जनसामान्य को किसी प्रकार का राजनीतिक या लोकतांत्रिक अधिकार नहीं दिया गया।

हालांकि मध्यकाल में गणराज्य, निर्वाचित राजा, सभा और समिति जैसी लोकतांत्रिक संस्थायें समाप्त हो गयी किन्तु ग्राम स्तर पर ग्राम सभा तथा ग्राम पंचायत जैसी प्रतिनिधि निकाय किसी न किसी रूप में हिन्दु–मुस्लिम राजवंशो तथाअंगेजी शासन के आगमन तक फलती फूलती रही जो आधुनिक निर्वाचन व्यवस्था को एक मजबूत आधार प्रदान की।

यह स्पष्ट था कि अंग्रेज भारत में एक व्यापारी के रूप में आये और अवसर का लाभ उठाकर धीरे–धीरे भारतीय राजनीति एवं प्रशासन के प्रमुख बन बैठे। ब्रिटिश काल में भारतीय नागरिकों को स्वतंत्रता से पूर्व बहुत कम या सीमित रूप में प्रताधिकार प्रदान किया गया जिसमें मार्ले मिंटो सुधार, भारत में संवैधानिक विकास के श्रृंखला की अगली कड़ी थी जिसका आरम्भ 1861 के भारतीय शासन अधिनियम के साथ हुआ था। इसका भारतीय निर्वाचन व्यवस्था पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव पड़ा। साम्प्रदायिक निर्वाचन की इस योजना ने राष्ट्रीय एकता को आघात पहुंचाया तथा भारत विभाजन के बीज बो दिये।

1909 के अधिनियम द्वारा विभिन्न सम्प्रदाय के मतदाताओं में अत्यधिक और अनुचित भेद–भाव किया गया इस अधिनियम द्वारा प्रजातंत्र में निर्वाचन का सिद्वान्त ग्रहण किया गया था तथा उसी समय लोकतंत्र विरोधी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व जोड दिया गया था। श्चुनावश, श्अप्रत्यक्ष चुनाव ही सहींश के सिद्वान्त की स्वीकृति 1909 के इस अधिनियम का एक महत्वपूर्ण कदम था, 1919 के अधिनियम ने ब्रिटिश भारत में प्रत्यक्ष निर्वाचनों का सूत्रपात किया और मताधिकार को बढ़ा दिया। परन्तु इस अधिनियम की सबसे असन्तोशजनक बात यह थी कि निर्वाचित सदस्यों के निर्वाचन हेतु मताधिकार अत्यन्त सीमित रखा गया। बल्कि विभिन्न सुधारों के अन्तर्गत साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को केवल जारी ही नहीं रखा गया वरन् उसे विस्तृत किया गया। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि 1919 की सुधार योजना दोषपूर्ण थी और इनमें अनेक दोष थे जिन्हे नकारा नहीं जा सकता, परन्तु इसे पूरी तरह लाभहीन भी नहीं कहा जा सकता। पहली बार इस अधिनियम के द्वारा भारतीयों को बड़े पैमाने पर मताधिकार प्रदान किया गया था। जिससे भारतीयों मैं राजनीतिक जनजागरूकता उत्पन्न होना स्वाभाविक था। इस अधिनियम के आधार पर विभिन्न रूप में होने वाले चुनावों ने भारतीयों में सार्वजनिक जीवन के प्रति रुचि उत्पन्न की।

1935 के अधिनियम के द्वारा मताधिकार को पहले से अधिक विस्तृत बना दिया गया था जिस कारण प्रान्तीय विधानसभाओं के लिए लगभग 14 प्रतिशत जनता को मताधिकार प्राप्त हो गया था लेकिन साथ ही साथ साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का पहले से अधिक विस्तार कर दिया गया था। 1935 के भारतीय शासन अधिनियम की योजना का संधीय भाग कभी कार्य रूप में परिणित नहीं किया जा सका क्योंकि देशी राज्यों के नरेशों ने संघ योजना को अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस ने भी न केवल अधिनियम की संघीय योजना को ठुकरा दिया बल्कि भारत के भावी संविधान का निर्माण करने के लिए एक संविधान सभा की मांग की। जिसके परिणाम स्वरूप 1946 में कैबिनेट मिशन योजना अस्तित्त्व में आयी जिसमें भारत के भावी शासन व्यवस्था चुनाव प्रणाली आदि की चर्चा की गयी थी। कैबिनेट मिशन योजना को अन्ततः सभी दलों ने स्वीकार कर लिया जिसके उपरान्त जुलाई 1946 में इस योजना के तहत चुनाव सम्पन्न हुए तथा भारत स्वतंत्र हुआ, एवं एक संवैधानिक संस्था के रूप में भारतीय निर्वाचन प्रणाली अस्तित्व में आयी जिसका प्रमुख कार्य भारत में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना था, जिससे देश में एक स्वस्थ्य एवं सार्वभौमिक लोकतंत्र की स्थापना हो सके तथा लोकतंत्र के मूल उद्देश्य जनता का जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन के उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। परन्तु आजादी के सात दशक बाद भी भारत विश्व का सबसे विशाल एवं सफलतम लोकतांत्रिक देश होते हुए भी अनेक समस्याओं एवं जटिलताओं जैसे जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद राजनीतिक भ्रष्टाचार, चुनाव में धनबल की प्रमुखता तथा विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव आचार संहिता का उल्लंघन, सदस्यों के योग्यता एवं अयोग्यता सम्बन्धी निर्णय, चुनाव आयोग का बहुसदस्यीय बनाये जाने की मांग, आयोग के सदस्यों की नियुक्ति जैसे गंभीर समस्याओं से ग्रसित है। हालांकि सरकार द्वारा इस समस्याओं के निराकरण एवं सामाधान के लिए समय–समय पर अनेक अधिनियमों एवं समितियों का गठन किया गया है जैसें जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1950, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951, जनप्रतिनिधित्व संशोधन अधिनियम 2009, तथा तारकुण्डे समिति 1974, दिनेश गोस्वामी समिति 1990, वोहरा समिमति 1993, इन्द्रजीत गुप्त समिति 1998 तथा चुनाव कानून सुधार सम्बन्धी विधि आयोग इत्यादि।जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1950–

यह अधिनियम निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित है–

- फर्स्ट–पास्ट–द–पोस्ट पद्धति।
- एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र से सम्बन्धित प्रावधान।
- चुनाव, उप–चुनाव आदि से सम्बन्धित प्रावधान।
- निर्वाचन संचालन के लिए प्रशासनिक तंत्र के ढाँचे से सम्बन्धित प्रावधान।
- सीटों के बंटवारे और संसदीय क्षेत्र के परिसीमन से सम्बन्धित प्रावधान।
- संसदीय क्षेत्रों हेतु निर्वाचक नामावली के निर्माण एवं सुधार हेतु प्रावधान।
- प्रादेशिक निर्वाचन अधिकारी, जिला निर्वाचन अधिकारी और अन्य अधिकारियों की नियुक्ति और अधिकार से सम्बन्धित प्रावधान।

जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 –

- यह अधिनियम निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित प्रावधान करता है–
- राजनीतिक दलों के पंजीकरण और मान्यता सम्बन्धी प्रावधान।
- उम्मीदवार की अर्हता सम्बन्धी प्रावधान।
- निर्वाचन के विनियमन और संचालन हेतु निर्वाचन आयोग के अधिकार
- सम्बन्धी प्रावधान।
- तारकुण्डे समिति 1974 –

समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिये जो इस प्रकार हैं–

- आय के स्रोतों का उल्लेख तथा आय–व्यय का पूरा हिसाब लिखना समस्त राजनीतिक दलों के लिए अनिवार्य कर दिया जाये और निर्वाचन आयोग इसकी जांच करायें। उम्मीदवारों के चुनाव खर्च के हिसाब की जांच भीकरायी जाय। राजनीतिक दलों द्वारा उम्मीदवारों पर किया जाने वाला खर्च उम्मीदवारों के हिसाब में जोड़ा जाये तथा चुनाव खर्च की वर्तमान सीमा को दुगुना कर दिया जाये।

- चुनाव के दौरान मन्त्रिमण्डल के सदस्य सरकारी खर्च पर यात्रा न करें। सरकारी सवारी और विमान प्रयोग में न लायें, उनकी सगाओं के लिए सरकारी मंत्र न बनायें और उनके दौरों के समय सरकारी कर्मचारी तैनात न किये जायें।

- राज्यों में निर्वाचन आयोग स्थापित किये जायें, केन्द्रीय निर्वाचन आयोग में एक के बजाय तीन सदस्य हों तथा उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति केवल प्रधानमंत्री के परामर्श पर नहीं, अपितु तीन व्यक्तियों की एक समिति की सिफारिश पर करें। इस समिति में प्रधानमन्त्री, सर्वोच्च न्यायालय तथा लोकसभा में विपक्ष का नेता अथवा विपक्ष का प्रतिनिधि हो।

- निर्वाचन आयोग विपक्ष की सहायता के लिए केन्द्र और राज्यों में निर्वाचन परिषदें बनायी जायें, जो उसे सलाह दें। इन परिषदों में विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि हों। इनके अलावा श्मतदाता परिषदेंश् भी बनायी जाये, जो निर्वाचन के समय होने वाली बुराइयों पर निगाह रखें तथा निर्वाचनों के समय होने वाली बुराइयों पर निगाह रखें तथा निर्वाचकों की निष्पक्षता की रक्षा करें।

दिनेश गोस्वामी समिति 1990 :–

- समिति द्वारा भी कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये गयें जो इस प्रकार है–

- निर्वाचन आयोग तीन सदस्यीय निकाय होना चाहिए।

- मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधीश और विपक्ष के नेता के साथ विचार विमर्श करके की जानी चाहिए। अन्य सदस्यों की नियुक्ति के लिए मुख्य निर्वाचन आयुक्त से विचार विमर्श किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. घूर्ये, जी.एस., कास्ट, क्लास एंड ऑक्यूपेशन, बॉम्बे, पापूलर प्रकाशन, 1961.
2. चटर्जी, एस.के, द शिड्यूल्ड कास्ट इन इण्डिया, नई दिल्ली, ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, 1995.
3. चक्रवर्ती, के तथा भट्टाचार्य, एस.के., लीडरशिप फ्रैक्षंस एंड पंचातयी राज्य, जयपुर, रावत पब्लिकेशंस, 1994.
4. जैन, आर.बी., पंचायत राज, वॉल्यूम फ्रॉम आई.आई.पी.ए., नई दिल्ली ।
5. जोशी, आर.पी., कॉस्टीट्यूशनलाइजेषन ऑफ पंचायती राज, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स, 1997.